



Editor
SITALPRASAD BRAHMCILARI,
PUBLISHER
Jato-Mitra Karyalaya,
HIRABAG, GIRGAON, BOMBAY.



Printed by
C S. DEOLE
at his Bombay Vaithav Press,
1, Sadashiv Lane, Girgaon,
BOMBAY.

प्रस्तावना ।

एको मे शाश्वतात्मा सुखमनुख भजो ज्ञान दृष्टि स्वभावो ।
नान्यद् किंचिद्विजं मे तनुयन करण भ्रातृ भार्या सुखादि ॥
कर्मोद्धृतं समस्तं चपलमनुखदं तत्र मोहो ह्येष मे ।
पर्यालोच्येति जीव स्वादिनमवितथं मुक्तिः मार्गः श्रयस्त्वम् ॥४६६॥

(अतिरिक्त)

श्रीअमिताभगति आचरण कहते हैं. "हे जीव ! तू ऐसा विनम्र बन कि मैं एक हूँ, अविनाशो अनाम हूँ, सुखदुःखको आप ही भोगने वाला हूँ तथा ज्ञान दर्शन सम्भावक धर्मो हूँ । शरीर, घन, इन्द्रो, भर्तृ, रसो, जगत्, सुख आदि कोई भी अन्य जीव मेरी नहीं है; क्योंकि ये सब जगत्के पदार्थ बनने उत्पन्न, वंचित (समंभूत) और अन्तर्गत दुःखदाई हैं । इनमें कोई कारण मेरी मूर्तता है और तू अपने कल्याण करने-करने सबेरे मेरे—मार्गक आश्रय बन ।"

प्रिय मत्स्य सुहृदयो ! मेरा जन्म ही अत्यन्त शुद्ध निमित्त
अपने स्वभाव है । मेरा यह अन्तः अत्यन्त सार्वजनिक सुखदायक
है, मत्स्य सुहृदोपयोगी मानी है, मत्स्य समन्वयक है । मैं
निष्पक्षपाती बनके सिधे समन्वयकी मजदूरी ही करवा रहा हूँ,
निम्नको अन्तःसमाप्त अन्तः करने है

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 अथ श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ॥
 अथ श्रीकृष्णस्य वचनम् ॥

करना है । यद्यपि बहुतसे लोग आत्मीक रसके आस्वादको लेना चाहते हैं, परंतु उनको साधु संगतिकी अप्राप्तिसे तथा स्याद्वादनय-द्वारा संगठित पदार्थ मान्दिकके ज्ञानका अनुभव न होनेसे वे अपनी भावनाको पूरी नहीं कर सकते हैं ।

आत्मानुभवके रसिक मुमुक्षुजनोंके हितार्थ ही हमने अपने उप-सुच्छ अनुभवके द्वारा जो हमको श्रीसमयसारणी, श्रीपरमात्मप्रकाशनी तथा अनुभवप्रकाशनी आदि अध्यात्मिक ग्रन्थोंके बाँचनेसे हुआ है, जैनमित्रके अन्दर ता० २१ मई सन् १९०९ के अंकसे लेता० १० अक्टूबर १९११ के अंक तक अनुभवानन्द नामके लेखोंको प्रकाशित किया था । अब हमारे पास बहुतसे भाइयोंकी प्रेरणा हुई कि इन लेखोंको पुस्तककार निकाला जाय, इससे यह पुस्तक प्रगट की गई है ।

पाठकोंको उचित है कि इसके हरएक लेखको एकत्रमें बैठकर पुनः पुनः कई बार बाँचें । जब बाँचते २ उपयोग मिलेगा तब परमअनुभवरसका स्वाद आवेगा । यदि शीघ्रतासे इस पुस्तकको पढ़ा जायगा तो आनन्दका मिलना कठिन होगा ।

यदि प्रमाद व अज्ञानवश इन लेखोंके संगठनमें कोई अशुद्धि रह गई हो तो विद्वज्जन हमें क्षमा करते हुए सुधार कर पढ़ें तथा हमें सूचना दें ताकि द्वितीयवृत्तिमें सुधार दी जाय ।

ग्रंथ संशोधनमें जो कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं, उनका शुद्धाशुद्धि पत्र इस पुस्तकके शुरु में ही लगा दिया गया है; पाठकगण, पहले उसके अनुसार अशुद्धियाँ सुधार लें फिर पुस्तकको पढ़ना शुरू करें

मुल्तान शहर
ता० ८-९-१९१२ ई० } जीवनप्रसाद ब्रह्मचारी ।

विषय सूची ।

विषय.	पृष्ठ संख्या.
अगम दुर्ग	१
अद्भुत चोरी	३
भोजन-सत्कार	५
तृपा-शमन	७
मेरी महिमा	१०
युद्धमें गृहस्थ-मुख	१२
विवाह-रस	१६
दशलक्षणिक धर्म	१९
आगारी साधु	२२
बन-विहार	२३
आत्मिक रामायण	२५
स्ववस्तु-वाटिक	२९
सम्यक्कीर्ती अथर्व सामायक	३०
आत्मिक बाह्य तप और अद्भुत कथाय	३३
अध्यात्मिक अनरग तप	३७
गुप्तार्थे विश्राम	३९
निर्यात्वा गुणस्थानकी दशा	४१
नाम-दत्त गुणस्थानकी बदन	४५

विश्वगुणगानना दिग्ग	४९
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	५१
भावादा मोक्ष महर्षेयं प्रोक्त	५४
वसन्तगर्भः सि भावादा	५७
अवसन्तगर्भः भावादा	५९
अवसन्तगर्भः भावादा	६१
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	६४
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	६६
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	६८
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	७०
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	७२
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	७४
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	७६
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	७८
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	८०
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	८२
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	८४
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	८६
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	८८
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	९०
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	९२
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	९४
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	९६
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	९८
अविश्वगुणगाननीयो निज निर्विकर्म	१००

इन्द्रियमार्गणाकी ओछी शक्ति	९३
कायमार्गणमें आकुलता	९६
मैं अक्षय हूँ	९८
योगमार्गणमें ढगमगाहट	१००
देवमार्गणाकी आकुलता	१०२
कषायोंकी वंचकता	१०३
ज्ञानमार्गणाकी महत्त्वता	१०६
संयममार्गणमें स्वरूप विक्रम	१०८
दर्शन मार्गणाका अवलोकन	११०
लेख्य मार्गणमें भवभ्रमण	११३
मन्याभव विकल्प न करना	११५
सम्यक्त मार्गणाकी झलक	११८
संज्ञी असंज्ञीकी कल्पना	१२०
अहारक मार्गणाका विकल्प	१२२
पंच मण्डोंकी छत्र	१२४
अनुभव सुख ही मार है.	१२६

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	मनि	मनि
२	म अय	ममय
४	मनि	मनि
५	मेहाव	मेहव

१४	शांत	शांत
१३	जागा	जागा
१९	दृष्टि	दृष्टि
११	सम्यक्ता	सम्यक्ता
८	दृष्टि	दृष्टि
१२	सम्यक्दृष्टि	सम्यक्दृष्टि
३	बेसुष	बेसुष
१५	को शांतकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें शांतकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलन में इस जापी आत्माको	को शांतकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें इस जापी आत्माको
१०	को	की
९	८००	८०००
१७	कायों	कायों
१	घारे	घारे
८	सम्यक्दृष्टि	परमसम्यक्दृष्टि
६	पहनने	मनन करने
५	कृत्स्न	कृत्स्न
४	कृत्स्न	कृत्स्न
३	कृत्स्न	कृत्स्न
२	कृत्स्न	कृत्स्न
१	कृत्स्न	कृत्स्न

१०७	१४	१/२द्विरूपवर्गधारा १.२	१/२द्विरूपवर्गधारा
१०८	१७	प्रतिभा समान	प्रतिभासमान
१११	६	उपयोगका	उपयोगकी
११४	१४	कर्मबंद	कर्मबध
११८	८	कारणलब्धिद्वारा	करणलब्धिद्वारा
१२२	२०	जीवका	जीवको
१२४	१४	आहरको	आहारको
१२४	१८	धम्पी	स्वरूपी
१२६	७	काष्ठा	काष्ठ
१२६	१२	व्यवहारक	व्यवहारिक
१२८	६	मूलकाती	मूलकाता



श्रीविठ्ठलाय नमः ।

अनुभवानन्द ।

अगम दुर्ग ।

(१)

मोहनवरके अन्तर्गत मंत्राक्षर प्रत्येक करण संतरी जीव
 होमिन् नम हो निज स्वरूपके झलक न पा परमद्वय
 द्वातेन प्रमग करण हुआ किम विलक्ष ज्योतिसे प्रदर्शित पदार्थ और
 उनके परिणतनके अन्तर्गत शक्तिकरक नान उनके निकट जाता
 है, परन्तु शांति न प्राप्तकर अधिक मोहनवरके वडा अधिक २ अनु-
 लित होता है । तीन लोक अनेकक शक्ति-द्वय, शुद्ध चैतन्यमय
 अविनाशी, निर्विकल्प, परमानन्द स्वस्व प्रभु अपने स्वरूपके मुख
 अन्त परमद्वय अन्त है जो मोहिन् है वह है यही अक्षर है ।
 मोहिन् अनेके अन्त-मोहिन् प्रमग करण जो अन्त मोहिन्
 अन्त करण वह है यही अन्त है अन्त अनेके अन्त-
 अन्त करण अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त
 अन्त है मोहिन् अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त
 अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त

सिंह पदकी गुप्त शक्ति अपने अनुभवमें आ जाए, तबमें ही सत्त्व
 पदको उन्मूलक निर्णय हो अपनी शक्तिकी अपनेमें मान्यता को
 नेमें निराकुल रहे, सुदृढ संगतिमें न पड़े। अपनी मानी सुखा
 और अपनी मानी ही दुःखदाई है। मैं ही सिद्ध निरंजन परमात्मा हूँ
 मुझमें अन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभादि भावकर्म, ज्ञानभय
 आदि द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म—सर्व अन्य ही हैं। वैशणिक, मैं भी
 नाशी हूँ। वे मूर्तिक, मैं अमूर्तिक हूँ। वे दुःखभाव, मैं सुखभाव
 हूँ। वे उपाधिरूप, मैं निरुपाधि हूँ। वे मरत्यक, मैं निमरत्यक हूँ।
 परार्थीन, मैं स्वार्थीन हूँ। उनका मेरा जग भी खेल नहीं। जो उनकी
 संगति को वह मदीही हो। जो मेरी संगति को वह निर्दोषी हो
 मेरी सत्यति अविनाशी, उनकी विभूति विनाशीक। मैं अपने निज
 आत्मानुभवकी भावनामें परमवृत्त हूँ। मुझमें जन्म, मर रोग, व्याधि
 नहीं, कर्म रिपु मेरा मुह देखने नहीं; मेने अपनी अनुभूतिकी भूमि
 में ही अपना अगम दुर्ग बनाया है, उसीमें निवास करता अपने
 विद्वत्भूति शरीरके साथ मुझमें प्रवेश कर रहा हूँ। मुझे मोहन, वर
 आभरण, युगल द्वेय, नैल, कुंकुम, शय्या, आसनकी आवश्यक
 नहीं। अपना मुकुटमण्ड, अपना मोहन, अपनी विभूति प्रशंसाकरी,
 अपना वर, अपना अस्त्ररूप शक्ति, अपना आभरण, अपना ज्ञान,
 अपनी सुखा। अपने जन्ममरण अपने द्वेय अपने मान्य-
 ईश्वर, अपने नैल द्वेय अपने मरत्यक द्वेय अपने शय्या
 अपने आभरणमण्डल। अपने अस्त्ररूप शक्ति अपने आभरण में
 और मैं विद्वत्भूति परमवृत्त निज मुझमें ही मरत्यकभावक

हैं। मेरे दुर्गमें अन्य किसी मेरे विरुद्ध पक्षका प्रवेश नहीं। मैं अपनी अद्भुत शक्तिका आप स्वामी हूं। मैं सबको देखता हूं, परन्तु मुझे कोई नहीं देखता। मैं किसीके पास जाता नहीं, परन्तु सब मेरे निर्मल आत्मदर्पणमें (जो मेरे ही अनुपम शय्या महलमें लगा है) आपसे आप अपनी समय २ की परिणतियोंको लिये आ आ कर मुझे अपना रूप दिखा रहे हैं। मुझसे अन्य जन परस्पर एक दूसरेको रागसे ग्रहण करते हैं, परन्तु मैं अपनी चिदनुभूतिरूप पटरानीके सिवाय किसीको ग्रहणकर पर-पद-रत नहीं होता। जिस सुखको पानेके लिए मुझसे अन्य जन तरसते हैं, उस आनन्दको पाकर मैं अनुभवानन्द रूप रहता हूं।

अद्भुत चोरी।

(२)

आज मैं, जो अनादि कालमें मोह, मदिराके तीव्र नशेमें बेहोश हो रहा था, किञ्चित् मदकी हीनतासे जो सचेत होता हूं तौ अपने ज्ञानानन्द स्वरूप अरूप अविनाशी अखंड त्रिलोकभूष चैतन्य प्रभुको अपनी दृष्टि मन्मुख न देख विह्वल होता हूं और उस वीतराग स्वस्वभाव-गुप्त स्वामीमें गगन प्रगट करनेको दौड़ता हूं; जिम नगन् कृत्रिम रूपकी प्रत्यक्ष चमककी उमकमें जाना हूं, वह ही जलके भ्रममें बालूके पत्तेमें है अधिक अधिक अपने श्रेष्ठ इष्ट ईश्वरमें मिलनेकी लचिरूप-तृप्ति में बधिन होता हूं। अपने परम स्नेहीकी स्नेहमें परलयमान होने होने मैं एक शीतल सम्यक्त वृत्तकी छायामें अकर विभ्रम में हूं और बहु

परिणतिसे उद्योग करता हुआ सर्व विभूति भुगाकर अपने त्रिकोटके भीतर गुप्त भंडारमें रखता हूँ और उसको भोगकर सुखी होता हूँ ।

यद्यपि मैं मूकवत् व्यवहार करता हूँ, पर मैं कभी अपने अचौर्यघतको खंडित नहीं करता । यद्यपि मैं स्वात्मघन भुगाकर लाता हूँ, तथापि जहाँसे लाता हूँ वहाँ वह घन वैसाका वैसा ही बिना एक परमाणुको कम किये रहता है । यह कुछ मेरी चोरीमें अद्भुत शक्ति है कि, जिसको मेरे स्वामी भले प्रकार जानते हैं और यह उनकी ही आज्ञा है कि ऐसी चोरी करो, तुम कभी अपराधी नहीं हो ।

आज इस वृक्षकी शीतल विवेकरूपी छायामें बैठकर और अपने इष्ट परमेष्ठी निरंजन परब्रह्मरूप स्वप्नभुक्ता अनुभवकर सर्व वासनासे रहित अनुपम अनुभवानन्दको प्राप्त होता हूँ ।

भोजन-सत्कार ।

(३)

चैतन्य अभिराम गुणधाम आत्मारामका विधानरूप पद अटल, अभय, अचल, अविनाशी और अमर्यादरूप है । जिस पदकी दीप्तिमान किष्कावली भगवत्जीवनको क्षणमात्रमें विन्यस्त कर देती है; जिस पदके सम्मुख पदविन्यस्त पदभय लज्जित हो रहने नहीं, जिस पदके धर्म, निजधर्म विहार, अविकार, अशङ्का रहकर अनन्यकृत तब भी निजपद-सम्मुख नही रहे उसके अस्मिता, भव ब्रह्ममें उदय अस्त मोहमय कारणके हृन्मय अज्ञ अज्ञान प्रसिद्धि

प्रवेशकर भेदज्ञान खड़ग ले चिरकाळ प्रवेशित रिपुदलको संहार करनेके अर्थ उद्यमी हुए हैं ।

इस खड़गकी दीप्ति पाते ही शत्रुओंके दल कहां चला गए—सो कुछ पता नहीं । वे रहें या जाए उनकी ओरसे भयका विध्वंसकर निर्भय हो अनुभव रसका प्रेमी अपनी निर्मल अनुभूति देवीका दर्शनकर उन्मत्त हो उसके अद्भुत रूप रसका पान करते २ ऐसा एकासन हो गया है मानो एक स्फटिकमणिकी पुरुषाकार मूर्ति ही है ।

ऐसी स्फटिकमणिकी पुरुषाकार मूर्तिमें अपनी निर्मलताके कारण जो जो पदार्थ प्रतिभाषित होते हैं, वे सब स्वयं अपना जैसाका तैसा रूप देल अपनी पर्यायके अभिमानमें अपने २ स्थलसे सरक कर कभी भी इस मूर्तिमें आते नहीं और न यह उन्मत्त पुरुष दौड़कर उनकी तरफ जाता है । इस अंतरंग भूमिमें रमनेवाले पुरुषका स्वमानका अभिमान इस पुरुषको सर्व अन्योकी प्रीतिसे तुड़ाकर एकाकी कर देता है; तथापि इस मुग्धको सुष नहीं, यह किसीकी भी परवाह न कर अपने अनुभव रसके स्वादमें मग्न है ।

यद्यपि यह उन्मत्त है तथापि इसकी अनुभूति देवी सदा सावधान है । इसके शत्रु, जो इसकी खड़गकी चमकसे छुस हो गए थे, रह रहकर इसको दबानेके लिये आते हैं । उनका मुख देखते ही अनुभूति देवी इसे चिताती है । यह उसी क्षण भेद—ज्ञान—असिको चमकाता है । वे दुश्मन फिर गुप्त हो जाते हैं ।

इस प्रकारकी उन्मत्तता उन्मत्त पुरुषको कैसा बना देती है, यह वह पुरुष ही जाने या उसका निज निर्मल रूप जाने । इस ज्ञानमें

बम्बोंको फेंकता है और बिना किसी ओर देखे नग्न हो स्वरस-सरो-
वरमें प्रवेश करता है । शांत, मिष्ट, निर्मल स्वरस पूर्ण, स्वानुभवकी
वैराग्य पवन द्वारा घेरी हुई, कछोलें जब उस पुरुषके तनको
स्पर्शित करती हैं और अपनी शांतता उसके प्रदेशोंके अन्दर प्रदान
करती है तब उस पुरुषको जो मवातापकी शांततासे निराकुलता
प्राप्त होती है उसको वही जानता है या ज्ञानानन्दी मित्र परमात्मा
जानते हैं । अपने निर्मल विवेकके फुल्लुओंसे शुद्ध स्वरस-जल लेकर
जब अपने स्वरुपाचल मुखके भीतर सेषण करता है तब वह पुरुष
तृपाको शमनकर अनुपम जलकी अपूर्व मिष्टताका स्वाद लेते
तृप्ति ग्रहित होता है । पीते पीते अघाता नहीं, पीते पीते कभी पेट
फुल्लाता नहीं, ऐसे जलका पानकर प्रफुल्लित बदन व्यक्ति अपनी
शक्तिकी व्यक्तताकी मलक पाकर सचेत होता है और उस सरो-
वरमें ही निरन्तर अग्गाह करनेका संकल्प करता है ।

अपने तनको दुःखमायमान देव और भव-वनमें भटकते हुए
अपने पूर्व माधियोंमें अपनेको श्रेष्ठ मान ज्यों ही वह अपनेको पर-
मात्मा, परब्रह्म अविनाशी, मोक्ष-प्राप्त-विहारी, अनुल पगक्रमपार
अकलांकन कर्ता है कि परायण इस मानके अभिमानमें उन्मत्त
हो या न गगनको भ्रम द्रव्य भावको मग्न अद्वैत हो, निरन्तर-तनमें
विगलित रह स्वप्न मग्नत्वके भीतर उन्मत्त वेशा करने आना
है । माने मग्नत्व ही अपना नृत्य स्थान बना जानना है । ऐसे
नृत्यका कर्म, निराश सम्पन्न-गुण रंगना, स्वप्नमें स्वप्ना, तब
जब नृत्य करने में मग्न है अपने तनको पहिले समयमें अधिक

मेरी महिमा ।

(५)

आज मैं कर्त्तापनेके कटुक, विरुद्ध और निःसार भव-विकारको त्यागकर निम ज्ञाता—दृष्टा स्वभावमें कष्टोत्तर करनेके लिये उद्यत हो गया हूँ । मेरा बनाया भव-विकार मुझे ही विष-आहार सा हो चुका है । जिस विकारने मुझे परार्थीन बंधनमें डाला और मेरी स्वतंत्रताका आघात किया उस शत्रुघ्न प्रबंधधारी व्यवहारीसे मुझे क्या प्रयोजन ! मैं चैतन्य-रसका चैतन्यमई घट हूँ । मेरा उपादान और निमित्त कारण एक ही है । मुझे त्रिलोकमें मेरे किसी परमाणुके अचक्षुरे* मात्रसे मतलब नहीं । मैं कभी किसीसे बनाता नहीं । मैं कभी किसीको बिगाड़ता नहीं । मैं अपने स्वस्वभावमें अविचलित रह सदा निम रसका ही पान करता हूँ । मुझे प्रेय, मान, माया, छेप और उनके पिता राग, द्वेष तथा महापिता मोहसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं । मैं शान्तरूप हूँ, वे उद्वेगरूप हैं । मैं ज्ञानरूप हूँ, वे अज्ञानरूप हैं । मैं निष्क्रियरूप हूँ, वे क्रियावान व्यवहाररूप हैं । मैं गुणनिवान हूँ, वे गुण विरुद्ध औगुण निवास हैं । मैं निरपराधी हूँ, वे अपराधवान हैं । मैं निर्वच हूँ, वे वचसाहित हैं । मैं एकाकी एक रूप हूँ, वे अनेकानेकरूप हैं । मेरा उनका त्रिकालमें सम्बन्ध नहीं, मेल नहीं, स्पर्श नहीं; न मैं उनका कर्त्ता, न वे मेरे कर्म । मेरे निर्मल ज्ञान दफ्तरमें कर्त्ता कर्मका शब्द ही नहीं । मैं

* अविभक्त परिच्छेदरूपगुण.

शुद्ध आहार—भोजी, अपनी शुद्ध परणितिका निरंतर खोजी हूं। मुझे मेरे ज्ञान—साम्राज्यका प्रबन्ध है, जिस प्रबन्धमें अनुरक्त मैं जगत्के प्रपंचरूप प्रबंधसे असम्बन्ध हूं। मेरा ज्ञान—साम्राज्य मेरी ही निरन्तर सावधानी और परम पुरुषार्थके बलसे अटल है। यद्यपि मैं त्रिलोकालोकमें व्यापक हूं, परन्तु सदा ही निज धलको न तजकर अन्यापकरूप हूं। यद्यपि मैं इन्द्रिय—ग्रामोंकी रचनासे शून्य हूं, तथापि अपने अतीन्द्रिय गुण ग्रामका धाम होकर अशून्य रूप हूं; यद्यपि मैं निज परिणाम—कर्मके करनेसे कर्त्ता हूं, तथापि परकर्तृत्वके अभावसे सदा अकर्त्ता हूं। यद्यपि मैं निज परिणति रमनके स्वादका भोक्ता हूं, तथापि परपदार्थका स्वाद न लेकर सदा अभोक्ता हूं। यद्यपि मैं परवस्तुओंकी प्रवृत्तिकी इच्छासे रहित सदा कृतकृत्य हूं, तथापि निजात्मीक स्वस्वमयरूप प्रवृत्तिमें प्रवर्तन करता हुआ सदा अकृतकृत्य हूं। यद्यपि मैं अपने आत्मीक द्रव्यका धारी अपने द्रव्यको सदा ज्योंकी त्यों रखकर नित्यरूप हूं, तथापि केवलीगम्य पदगुणी हानि—वृद्धिरूप समुद्र—कल्लोलवत् अगुल्लुगुण परिणमनके कारण नित्य पर्याय द्वारा व्ययोत्पादको सहन करता हुआ अथवा नित्य अपनी अवस्थाको बदलनेवाले ज्ञेय पदार्थोंके मेरे निर्मल ज्ञान—दर्पणमें समय २ परिवर्तन होते हुए ज्ञेयाकारोंकी अनित्य स्थितिके झलकनेके कारण उस झलकनको धारण करता हुआ अनित्यरूप हूं। यद्यपि मैं केवलज्ञान—तनका धारी होकर अपने जाति स्वभावधारी केवलज्ञानियोंसे प्रत्यक्ष और सम्यग्ज्ञानियोंसे परोक्षरूपसे दर्शने योग्य हूं, तथापि निजानुभवरहित उन्नम्य अज्ञानियों द्वारा सदा ही अदृश्यरूप

हूँ । मेरी शक्ति निराली है । मेरे ही अनुभवने मेरी शक्तिकी व्यक्तता निकाली है, परमपदधारी परमेष्टी, पंचनाम व्यवहारी, अविकारी, साम्य प्रचारी, सुखकारी, मेरे ही अनुभवकी अपूर्व महिमा है । मुझे जो कोई विभाव भावोंका और परद्वयोंका कर्ता कहे वह स्वयं अज्ञानी और अनुभव-रसरहित, निरसका स्वादी, मोह व्याधिसे पीड़ित परमानी है । जिन्होंने आत्मसाग खगाया है और उसमें सुगुणरूपी सुगंधित पुष्पोंको उगाया है वे आत्म-मोही मुझे कभी भी परका कर्ता कहनेके नहीं । मैं आज अपने स्वतंत्र बल्के अभिमानमें उन्मत्त हो अपने आत्म-बनके भीतर घूँसा करता हुआ स्वात्मगुण पुष्पोंकी सुगंधसे लेता हुआ और निजपरिणतिरूपी अर्द्धाङ्गिनीके साथ सैर करता हुआ परआनन्दसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद लेता हूँ ।

युद्धमें गृहस्थ-सुख ।

(९)

जिम शत्रुने आने तीव्र पराक्रमसे तीन लोकके संसारियोंको नीतकर अपना विजयका डंका बजाया है और जो अपने त्रिलोक-विजय अभिमानकी मदिरा पीकर उन्मत्त हो युद्ध-स्पर्धामें आकर मरता हो अपना वेष्ट कृत्य रहा है-ऐसे शत्रुको जीतनेके लिये आज मैं अगतिन भेदज्ञानद्य वनुर हाथमें लेकर सड़ा हो गया हूँ । मैं वनुरी शस्त्रके ममने छिपीकी भी नाकन नहीं है कि जो टिक सके । मैं केवल वनुर्यसे निरुत्थर हुआ बीनराग भावका बाग

गया, परन्तु ज्यों ही मैं जरा दम लेता हूँ कि वह निर्लज्ज फिर सामने ताकता है। सच है, मैं पंचम गुणस्थानके रेजिमेंटका सिपाही हूँ। मेरे बाणोंमें उतना बल नहीं जितना श्रेणी—आरूढ़ लेफ्टिनेन्टोंके बाणोंमें होता है, परन्तु मैं अब आलस्य करनेका नहीं, मैं तो इसको बारंबार बाण मारे ही जाऊंगा। मेरा यह अभ्यास ही मेरी उन्नति करेगा और मैं कुछ कालके भीतर अवश्य श्रेणी आरूढ़ हो तीव्र बाण चला इस शत्रुको मार मारकर निर्बल कर दूंगा और बारहवें दर्जेपर पहुंचते ही इसको ऐसी अचमरी हालतमें कर दूंगा कि यह निर्बल आंखोंसे मेरी ओर देरता रहे, परन्तु अपना सारा अभिमान और अपना सारा बल भूल जाए। मैं जहां चौदहवें दर्जेमें पहुंचा और अपने अनंतगुणरूप सेनाका स्वतंत्र कमान्डर—इन—वीर (सेनापति) हुआ कि इधर इस शत्रुका भी प्राणान्त हुआ। मैं जानता हूँ कि यह वैक्रियक रूप धारि है, नाना रूप होकर नाना जीवोंको सनाता है। इसकी जो अनन्दि अनंत शक्ति है उसको यह प्रयोग तो करेहीगा। करे, निम्नके दुर्भाग्य हैं उन्हींपर इसका आक्रमण होगा। मैं तो समझ गया हूँ। मैं तो इसकी नस नससे जानकार होगया हूँ। मेरा इसका मुख्यबल तो थोड़े ही दिनोंके लिये है। मुझे निश्चय है कि मैं इसे एक दिन मारकर गिरा दूंगा और तब यह अनंत काष्ठमें भी मेरा पुराबला करनेको मंदा नहीं हो सक्ता।

मैं अब भी मान्य है. मेरा कुछ भी बिगाड यह आश्रय नदबगी शत्रु नहीं कर सकता। यद्यपि मैं इस शत्रुसे युद्ध कर रहा

विवाह-रस ।

(७)

परमात्मके प्रवाहसे परिपूर्ण, एकटिक समान निर्मल, स्वच्छ
चिज्ज्योति विलसी, अविनाशी, अत्यानन्दधामप्रगसी, कर्मरहुमन
रहित, विभावमेघादम्बरविरहित, स्वभावपरिणमनविग्रहशतह
ज्ञान-चंद्रमा आज मेरे स्वच्छ हृदयरूप आकाशमें उदयको प्राप्त हुआ
है । मेरे अद्भुत चंद्रकी चांदनीके सामने मिथर देखता हूं पीतल
पीतलवही विदित होता है । कहां गए वे राग और द्वेष, जिनके व-
शमें पड़ा हुआ मैं किसीको शुभ और किसीसे अशुभ देखता था ।
धन्य है आजका समय । जिन दुष्टोंने मुझे कभी पापी और कभी
पुण्यात्मा कहलाया और मुझे अनादि कालसे अत्यन्त दुःख दिये
उन्हींकी सूरत आज मैं नहीं देख पाता हूं । जो मैं बहुत ध्यानमें
देखता हूं तो मैं अपने चंद्रमासे भिन्न अचेतन अवस्थामें पड़े हुए
और मर्षी, राम, गंध, वर्णको लिये हुए एक पुद्गलके समूह मात्रको
देखता हूं, जिस समूहका स्थूलसे स्थूल सुमेरु पर्वत सदृश टुकड़ा
अथवा मूर्ध्मसे सूक्ष्म परमाणु समान अंश मेरे चंद्रमाके स्वभावसे स-
ंबंधा भिन्न है । जिस पुद्गल समूहके किसी अहृदय विभागको मैं अ-
पनेही अज्ञानमें पुण्य और पापके नामसे पुकारता था, वही विभाग
आज मेरे ज्ञान-चंद्रमाके निर्मल प्रकाशमें एक नामसे और एक रू-
पमें अनिर्भाषित होता है । मेरे चंद्रमाका विमान उज्ज्वल, निर्वाण,
और चिन्मूर्तिमयी है । उमकय कोट भा पुद्गल-समूहका विभाग मर्त्य

कर, श्रीपरमात्म देवता दर्शन प्राप्तकर आस्थादिन हो गया है, निमिटे तेमके सन्मुख अनंत कोटि सूर्य भी तिमिराच्छन्न माने हैं। निमकी शांत ज्योतिके सामने अनंत कोटि चन्द्र भी नक्षत्रान् मंद-अन्ति प्रतिपादित होने हैं, निमकी निर्मलता और शुद्धताईके सफल स्फटिकमणि, मण्डरहित जड और सर्गार्थसिद्ध विमानशामी अहमिद्रोंके शुद्ध छेदयायुक्त परिणाम भी सम्मिश्रित भाव्य होने हैं। ऐसे शांत, मनोज्ञ, परमोत्कृष्ट प्रभुके दर्शन प्राप्तकर आज यह संतुप्त हो गया है। दिगम्बर जैन मुद्रा उत्तमशमादि दशलक्षण-धर्मरूप आभरणोंसे सुशोभित, रत्नत्रय जड़िन एककर ज्ञानरूप मुद्रासे शिखित, शिव-रमणीयमणके रत्नरूप रत्न मुक्त-जन्मसे उत्पन्न, ज्ञान दर्शननिर्मेत बहुजोमे दीनिमान् शुद्ध भेताम्बर मुद्रारूप ही प्रदर्शित हो रही है। निम मुद्राका मोही यह वैल्य मानि अकेद बिन्नामे पड़ मपुड-कछेलकन् आवरण कर रहा है। इसका रस्य दर्शनमे भवत आनन्द प्रदान कर रहा है। इसके स्वरूपके हनेमे अनंत कर्म-वर्गगायं इसके निष्ठ जाती हैं, परन्तु यह बोधमे न प्राप्त हो अपने आत्मरूप उत्तम शमा गुणमें लट्ठन है। अनंत अनुसन्ध गुणोंका स्वामी होकर भी मान-कथायगिरित, परममार्दव अधिपती, जो कोई माने, निमे ही सुगच्छी हो रहा है। अपनी सरलतामें तन्मय हो, कलरहित, परमपुष्टतामें शिखी आर्जसगुणवती, सदा-निहायी हो रहा है। मयममकारकी, अमयका-निहायी, परम गन्धर्व मय-पुष्टता शिखी, किन्दमयका-धारी, मय-अधिपती हो रहा है।

मयममकारकी, अमयका-निहायी, परम गन्धर्व मय-पुष्टता शिखी, किन्दमयका-धारी, मय-अधिपती हो रहा है।

आगारी साधु ।

(९)

सप्तमपरहित, स्वकुलमानावलम्बी, स्वमर्याद-प्रवाही, स्वसमाधानुरागी, सुधासमूह, आत्मसाधु आत्मव्यवस्थाके साक्षात् साधनमें उन्मत्त हुआ, विद्येरूपों विष्मरण किये हुए मनोहर आत्मवागेके सीतर रमन कर रहा है । मैं ज्ञाता, दृष्टा सत्यस्वरूप हूँ; मैं कर्ता मोक्षा नहीं हूँ, स्वरूपानन्दी मेरा इष्ट है । आत्मसाधुही यही अविचल ब्रह्मा, यही गात्र रश्मि, यही सचा लोभ हम साधुका परमप्रिय मित्र सम्पददर्शन है । स्वरूप ही शुद्धता स्वस्वरूप परिणमनमें ही प्राप्त होती है, विद्येक प्रभु अविनाशी सिद्धात्मा मेरा ही वास्तविक रूप है । वद् द्रव्यमय लोकमें जीव द्रव्य उपादेय और अन्य ज्ञेय और हेय हैं । यही सद्यः, निमोह, निध्रम रहित मया ज्ञान मेरा प्रिय सहोदर सम्पदज्ञान है । इन्द्रिय और अन्निन्द्रिय विषय कामनाओंमें दूरावर्ती काम, क्रोध, छेद, मान, माया, राग, द्वेष आदि विषयोंमें विस्तार, पक्षधर, सामान्य स्वमन्दन ज्ञानमें तल्लीन, तथा परम पवित्र आत्म सिगुद्धतामें मगन, स्वमयवागेही ब्रह्म आचरण मेरा सद्गुरु सम्पद चारित्र्य है । हम रत्नत्रय लब्ध परम धर्मज्ञ मनी आत्मसाधु दण्डित बदन आत्मप्रपातन्दे हेतु सर्व आत्मार्थों की ममान्ते उन्मत्त हो ओषधालय की सिद्धि की उत्तम लक्ष्य परम मुद्रा देवी की उत्तमरूप ममान्तो एक मुद्रात्वमें शिखरमन राज्य मरिचि स्व समुद्रम किन्ति ब्रह्म ब्रह्म ही निरात्रय

कही अनन भुल है, कही सायक सम्पत्त्व है तो कही परम
 धैर्य है; कही निराकुञ्चता है तो कही निराकुञ्चत्व है, कही
 वीनरागता है तो कही शिवनासिसे संयोगता है; कही अनन छाप
 है तो कही अनन भोग है; कही इन्द्रिय-भार-वियोगता है तो
 कही अनीन्द्रिय-भार-प्रगच्छा है; कही जगत् विस्मर्गत्व है तो
 कही जगत् स्मरणत्व है, कही विद्येच्छना है तो कही विद्येक-शून्य-
 त्व है, कही उत्तम दया है तो कही उत्तम ममत्व है; कही उत्तम शौच
 है तो कही उत्तम अविधिचिन्त्य है, कही परद्रव्य-रस-रविना है तो
 कही सद्रव्य-रस-प्रकारिता है। इन गुणरूपी सादोंकी शोभा और
 सुन्दर मुग्नपोंको छेता हुआ यह अंतरात्मा एक परम विलीन निर्मल
 धर्म-प्राप्तकी वृत्तकी छायामें विराजमान होना है । ॥ उत्तम
 उत्तम मार्गकी अत्यन्त कोमल और मनोहर पत्रोंका दृश्य हम
 अंतरात्माकी इन वृत्तोंको मूर्त ही समझ कर रहा है । उत्तम
 मन्यकी मुग्नविनयन इस वृत्तमें भेंट करके ज्यों २ इस अंतरात्माके
 विलीनको छाती है ज्यों २ इसके अंतर्गमें विद्येच्छा रसि निर्मल
 होता जाता है । भेद-विज्ञानके मनोहर पुनः त्रिम समय कदुते
 मन्त्रमें दृष्टा हम अंतरात्माके ऊपर बहने हैं हमारा माग
 शरीर उसकी मुग्नपोंमें बहक जाता है । जब हम अंतरात्माके
 मूल-पदम स्थिति है वह उन्नी मनस हम वृत्तके अनुपपन्न
 वृत्तोंमें भेंट होता है और उसके अंतर्गमें हुए मूल-मन्दार पत्र-
 का भारी दृष्ट होता वृत्तोंमें दृष्ट होता है । इस मुग्नमें अतृप्त
 रहित है । अतः अतः हम अंतरात्माके राग वृत्त काटते हैं ।

स्वस्वकी दृष्टिमें विषय आनन्दके कभी कोई क्लेश पानेवा नहीं
 है । वस्तु है वे छान्द ! इनकी सहायता मुझे परम सन्तोषित
 और पुष्ट कर रही है । बाल्यमें यह बाध तब तब ही बहानेके योग्य
 है, क्योंकि अज्ञानक संकल्प महित विषय है वहां तक निर्विघ्न स्व-
 संवेदन ज्ञान नहीं । निर्विकल्प स्वयंभूत ज्ञान ही साक्षात् अंतर्गत
 पाव है । वस्तु जवनक इस भावकी प्राप्ति नहीं तबतक मुझे इन
 छ. बाध तबोंको आश्रय निम्नतर तपना चाहिये । यद्यपि इनका
 संयोग मुझे निर्वास नहीं करता, मुझे गुणगानोंमें अतीत नहीं रक्त
 हा, किन्तु मुझे वह गुणगानकी रत्नार सज्जन कायापावगेही
 भावुकें तबमें मुक्ति रक्ता है सो गत्य ही है । मैंमें इनका
 शोध है कि, मैं तीन दोष-विनाशी निष्क-निकहे राज्यों पाऊँ ।
 मैंमें इनका शोध है कि मैं स्वयंभूत सज्जन ध्यानप्रिय गुह्यक कर्म-
 कर्माशेषों दण्ड करूं । मैंमें इनका मान है कि मैं आनेवां विद्व
 समान सर्वोत्कृष्ट वैश्वरूप समग्रण हूँ । मैं इस मानमें आती वनं
 मान सामाजिक अवस्थाके मुटू बनने है । मैंमें इनकी भाषा
 है कि विद्व अंग अंग करके अनेक ऐसे सुदृढ गच्छों
 के शक्ति हूँ ही मैं ऐसी ही बनने हूँ कि मैं सब विद्व
 सब अद्वैत अवागता का मत हूँ । मैंमें अनेक वृत्त है अंग
 अवागता वृत्त वृत्ति सब बाध है । इन सब बाधोंका दण्ड
 वृत्ति है सब वृत्ति वृत्ति दण्ड हूँ । वृत्ति वृत्ति है वृत्ति मैं
 वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति
 वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति वृत्ति

पने अपूर्व प्रकाशसे गिरकर ऐसे घोर अंधकारमें आनाता है कि फिर अपनी वस्तुको भुल और सबे सुखके उपायसे विमुक्त हो अपदोंमें तृप्त होता हुआ आकुल व्याकुल रहता है और स्वप्नमें स्वपदका स्वाल नहीं करता है । यद्यपि यह परमानंद स्वाधीन रसके स्वाद पानेके अवसरसे च्युत हो जाता है, परन्तु इसकी वृत्ति अनादि घोरानुघोर मिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा कुछ जुदी जातिकी रहती है । जिससे इसकी वृत्ति दूसरा अवसर कभी न कभी पाकर कि चौथी सीढ़ीमें चढ़कर परमानंद-स्वादको लेती है । यह निश्चय है कि यह जीवात्मा चौथी सीढ़ीमें चड़ेगा । यदि बहुतसे बहुत समय छो तो उतने कालका आधा ही काल खर्च होगा जितना काल एक जीवको जगत्के समस्त पुद्गलोंको ग्रहण करते हुए बीत जाता है (अर्थात् अर्द्धपुद्गलपरावर्तन) । वास्तवमें यह पतन किया हुआ मिथ्या-दृष्टी भी सराहनीय है । तथा यह कभी न कभी श्रीसाधु अरहंत और सिद्ध अवस्थाको अवश्य प्राप्त करेगा । इस अपेक्षासे उसी तरह नमस्कार करनेके योग्य है जैसे हम श्री श्रेणिक रानाके जीव भविष्य प्रथम तीर्थंकरको नमस्कार करते हैं । इस भव्यात्माने एक दफे शिवमंदिरकी झांकी कर ली है । वही आकर्षता इसको फिर अपनी ओर बुझाएगी, अवश्य बुझाएगी और क्रम क्रमसे शिवरूप बना देगी । हम इस समय हम त्रिलोकमें विराजित समस्त साक्षादन गुणस्थानवर्ती जीवोंको निश्चयसे सिद्धात्मा अनुभवकर उनके रूपको अपनेमें जोड़ते हैं और समस्त इन्द्रियाधीन मुराभासोंमें निःश्रय परम स्वाधीन अनुभवानन्दका स्वाद लेते हैं ।

[illegible]

... का ... बना रही है । इसके मोहमई
 ... मृगुण आपके आश्रय लेनेको
 ... हस्तनापुर
 ... होनवाले हैं ।
 ... मनमोहन मायके
 ... कर देगी ।
 ... अद्भुत
 ... है और
 ... लक्ष्मी लालको
 ... रक्ता
 ... शत्रु
 ... पाकर
 ... शत्रु,
 ... शत्रु,
 ... शत्रु-
 ... शत्रु

योंकी आशा व अपनी अमत् मान्यताकी तृष्णाको हटाना चाहिये
 और निर्विकल्प समाधिके आगममें नाकर बखोल करना चाहिये ।
 उस निर्मल आगममें नाना प्रकार नयोंके विकल्परूप—काटे व कंकड़
 नहीं हैं, नयोंकी कलरु अभाव है और न वहा गुणस्थानरूप ऊँच
 नीचपना है । स्थूल निमल आगममें ही रमण करना मेरा हित है ।
 उस आगममें जोने २ अनुभूतिमेंगी प्रिया मेरे निकट आ जाती है,
 निमल आगममें नाना प्रकार सभाषण और परस्पर प्रीतिका प्रादु-
 र्भाव प्रकट प्रकट होकर है । उस परम सामाधिकमें मेरा
 १ = शरीर व गुण, २ = यौनिक पुन—रूप ही हुआ मानों सकलता
 है । यही २ = प्रत्यक्ष व परन्तु भिन्न २ ही रहते हैं
 परम भिन्न २ = रहता है मेरा स्वरूप सम्भवमें अव्याबाध है ।
 या १ विवेक व नीति और मन्द शब्द, नात्र और मन्द गन्ध, तीव्र
 और मन्द रस, नीति और मन्द स्पर्श, तथा भारी व हल्के पुद्गल
 स्वल्प सब ही मेरे आगममें अपने स्वाभाविक रंगको लिये हुए चले
 आते नयोंके आगममें २ = का नहीं आना, कोई मलीनता
 नहीं आती है, नाना नद गन्ध होता । यह मेरी अनुभूतिका ही
 प्रताप है कि जो नयोंके आगममें आते हैं, उनको ओष, परन्तु मैं
 स्वभाव २ = शरीर व गुण, २ = यौनिक पुन—रूप ही हुआ मानों सकलता
 है । यही २ = प्रत्यक्ष व परन्तु भिन्न २ ही रहते हैं
 परम भिन्न २ = रहता है मेरा स्वरूप सम्भवमें अव्याबाध है ।
 या १ विवेक व नीति और मन्द शब्द, नात्र और मन्द गन्ध, तीव्र
 और मन्द रस, नीति और मन्द स्पर्श, तथा भारी व हल्के पुद्गल
 स्वल्प सब ही मेरे आगममें अपने स्वाभाविक रंगको लिये हुए चले
 आते नयोंके आगममें २ = का नहीं आना, कोई मलीनता
 नहीं आती है, नाना नद गन्ध होता । यह मेरी अनुभूतिका ही
 प्रताप है कि जो नयोंके आगममें आते हैं, उनको ओष, परन्तु मैं
 स्वभाव २ = शरीर व गुण, २ = यौनिक पुन—रूप ही हुआ मानों सकलता
 है । यही २ = प्रत्यक्ष व परन्तु भिन्न २ ही रहते हैं
 परम भिन्न २ = रहता है मेरा स्वरूप सम्भवमें अव्याबाध है ।

वीर पुत्र ।

(११)

[illegible]

तत्त्वरूपी अंजन ।

(३५)

आत्माराम अभिराम केवलधाम स्वकल्याणके सन्मुख हो सर्व अपने उन वैरियोंसे मुंह मोड़ रहा है, जिनको कि थोड़ी देर पहले अपना मित्र समझ रहा था । अनादिकी भूल मिथ्याके अब यह स्वपथका अवलम्बी हुआ है । इसने अपनी सब उन्नतता बहा डाली है तथा शम दम और यमसे परम शांत, विवेकी और स्वआचारवान् बन गया है । जिनेन्द्र कायित स्याद्वादरूप परमागम द्वारा प्रदर्शित तत्त्वरूपी अंजनको लगाकर अब इसने अपनी मिथ्यादृष्टिको सम्यग्दृष्टि कर दिया है । मोक्ष—मार्गमें साधक और बाधक ऐसे दोनों प्रकारके तत्त्वोंका सत्य स्वरूप इसने पहिचान लिया है । इसके अंतरंगमें भव-रुचि टूट गई, इन्द्रिय—मुखोंकी तृष्णा बिघट गई तथा कषायोंकी प्रसरता मिमट गई है । यह अब अपने रूपको देख चुका है । इसने अपनी गुप्त निधियोंको पहिचान लिया है । अब यह सर्व परका कर्मी चक्रकार अपने ही मूल धर्ममें अपनी ही नगरोंमें, अपनी ही निधियोंके द्वारा व्यवहार करना चाहता है । मोक्ष—मुखका विषय हो, अर्थात् इन्द्रिय धर्ममें रहना ही इसके मन्त्र है । अंतरंगगतिकी मुहावना भोजन ही इसके प्रिय है । यह अन्तरंगम अपने शुद्ध स्वरूपकी ओर देखता है और अन्तरंग नहीं है । दृष्टि नेत्रोंमें है, इनमें बहुत देर तक एकत्र देख नहीं सकता । यद्यपि इतर ९ कर पुनः ९ अवलोकन करना है तथापि एकद्वय अवलोकन न होनेमें किंचित् आकुलित रहता है । परन्तु इसका वाग्वार देखना इसकी ज्योतिकी शक्तिको

काम जिस परमात्माके मान-दृष्टिसे सम्पन्न होते हैं उसी परमात्माके पान करनेपर केवल अनन्तता को व्यक्तित्व का रूप रहते हैं, वे ही बुद्ध-मूह चेतनाके अनुपम कालके पान करने तक पान करते हैं। ऐसे सुखानुद विनियम पान करनेके निमित्त निर्विकल्प समाधिमें जब आश्रय करते हैं, तब तीन योगोंके आनेसे उपर्युक्त और स्वयं स्वयंके अनुपमकर रूप ही परमात्मा हैं—इन्हीं सम्पत्ति विचार करते हैं। यह विचार उनकी संसार काननमें हवा हो भी विरहादरूप लक्षणमें से जाता है। जहाँ अन्तर्मुख का कृष्णके देखता हुआ उनकी वैराग्य-रूप सुखके प्रसन्न अविशेष रूप होता हुआ सम्पत्ति दानात्मा सारण-सौख्यमें निमग्न होता है और जिस विरहित कर्म कालिकाके भेद-जनन मनुष्यमें होता हुआ अपने अंतर्मुख कालके प्रकटित करता है तब परम पवित्रता प्रसन्न रूप आह्लाद करता है कि नाना में स्वयं सिद्ध, निरंजन, निराकार, सार्वभौम और सुख-प्राप्त हैं। यह आह्लाद इस लक्षणोंके अन्त-रूपों में होता है और यह जीव अपने बहुतेरे गेह हटकर अन्त-रूप ही अपने सार्वभौम शत्रुओंमें लड़ता है और प्रत्येक कालमें उनकी शक्तिसे होकर विनय-मन्दन अनुभवानंदका लक्षण है।

आत्मीक हलवाई ।

22

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

कल जित परमात्माके ज्ञान-द्योति रोमायमान होते हैं उसी परमात्माके परम नगरे नगल आनन्द जो अवलोकन कर वृत्त रहते हैं, वे ही सुषा-समूह चंद्रमाके अनुगम कलके पाकर स्वानु-वक्त पान करते हैं। ऐसे सुखसमुद्र विनय परम तपस्वी निज निर्विकल्प समाधिमें जब आरोहण करते हैं, तब तीन लोकोंमें जननेसे पृथक् देव और स्वयं एककी अनुभवकर स्वयं ही परमात्मा हैं—ऐसा सम्यक् विचार करते हैं। यह विचार उनकी संसार कर्मनसे हृद्य हरे भरे चित्ताल्लादरूप उपवनमें ले जाता है। जहां अनन्तगुण रूप वृक्षोंके देखता हुआ उनकी वैराग्य-रूप सुगन्धके प्राप्तकर अतिशय वृत्त होता हुआ सम्यक् दृष्टात्मा मनरम-सरोवरमें निमज्जन होता है और चिर विरानित कर्म कालिकाके भेद-ज्ञान साधनसे घेता हुआ अपने अंतर्मुख कलके प्रकृष्टित करता है तथा परम पवित्रता प्राप्तकर ऐसा आल्हाद करता है कि मानो मैं स्वयं सिद्ध, निरंजन, निराकार, ज्ञानगुण और सुख-धारावर हूं। यह आल्हाद इन गत्वज्ञानके अत्म-तनके पुष्टि देता है और यह जीव अपने बहुतेरे रंग हृद्यकर अत्म-पुष्ट हो अपने रमादि शत्रुओंमें लडन है और प्रत्येक वंशमें उनके शक्तिके हानकर विनयमन्दर अनुभवानंदक लडन है।

आत्मीक हलवाई ।

३७

नेत्रमन्त्रान्तरं, गगन स्वभाव प्रहक, नयविभ्रम हेय अन्यमं, निद्रासुख-दर्शनकर्म अत्र सम्पूर्ण भव-मयिओंमें उदय हो शिव-

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय कर्मोंका नाशकर, स्वाभाविक मुखको पाकर तथा शिवरमणीते संभाषण कर जीवन्मुक्त हो अनुभवानन्दका अनुपम स्वाद लेता है ।

निजगुण गणना ।

(३८)

परम पुरार्थधारी, शिव-विहारी, ज्ञानानन्द-रस-संचारी, सम्यग्दृष्टी
आत्मा जब अपने आत्मीक धनकी गणना करता है तब गणना करते
करते कभी भी अंतको प्राप्त नहीं होता। अपनी शक्तिकी हीन प्रगटताके
कारण थोड़ीमी ही गणना करके थक जाता है और आराम लेनेके
लिये अपने शुभ गुणोंमें अन्य अनेक शुभ भावोंकी गणनामें लग-
जाता है, परन्तु ऐसा करते हुए भी इसको अपने आत्मीक धनकी
गणनाका स्वाद सूझता नहीं। इस कारण तुरंत ही निज शक्तिकी
सम्हार निज धनकी गणनामें लक्ष्मी हो जाता है। यही ज्ञान भवता-
की शक्ति का देती है और अपने प्रत्येक समेकमें शक्ति का देती
है और अपने प्रत्येक समेकमें इस ज्ञानी जन्मको समुद्र-रसकी
एक बूँद मान करती है निज बूँद का यह है वह समुद्र
जुमने बूँदों लिये कि समुद्र ही ज्ञान है निज समुद्र-जुमने यह
हृदय शक्ति का समुद्र-जुमने लिये कि हृदय ही शक्ति का समुद्र
जुमने समुद्र-जुमने कि समुद्र ही ज्ञान है और ज्ञान समुद्र ज्ञान-
के समुद्र में लिये कि हृदय ही शक्ति का देती है निज समुद्र

यह स्वरस-वेदी संसार पतनसे निर्मय रह निज रस विन्दुकी आशा करता है, परन्तु यह सम्यक् पुरुषार्थी है, इससे मात्र आशा ही करके चुप नहीं हो जाता है। इसकी रूचि इसको शीघ्र ही स्वसवेद-रसका अनुभव कराती है। त्रिलोकके पद्मद्वयमय पदार्थोंको सम्यक् ध्यानमें रखनेवाला यह सुधी उन सम्पूर्ण पदार्थोंमें किसी तरहका भी सासारिक राग और द्वेष नहीं करता है, कि निज पदार्थोंको मिथ्या-दृष्टी सम्बन्ध करके अपने मान लेता है तथा मनको प्यारे पदार्थोंमें राग और अमुहावने पदार्थोंमें द्वेष करता है। यथार्थ वेदी ही वास्तवमें आत्मज्ञानी और सुखमई है। वही कीतराग-विज्ञानतारूपी अपूर्व शक्तिमई देवीका सच्चा उपासक है। वही परम उत्सवमई आत्मीक अस्तावेमें समस्त त्रिलोक जन-समूहके सन्मुख ज्ञानानन्द नाम वृत्त्य करके उसी तरह अपने मोक्ष-एनाको रिताता है, जिस तरह इन्द्र जन्मोत्सवके समय धीतीर्यकर प्रभु और उनके माता पिताके सन्मुख आकर आनन्द नाटक करके आनन्द करता है। यह समयमारका नाटक परमसुखरूप है। जो इस नाटकके रसिया ने इस दुःखरूप मातापुत्रके अन्दर निवास करते हुए भी मोक्ष-वासकेमें परमात्मादके भोक्ता हैं। यह बान विद्वान् सत्य है कि अनन गुण पर्यायकारी आत्माका स्वरूप स्याद्वादके द्वारा सम्यक् निश्चय कर जो कोई जीवन्मा स्वात्म स्वभावमें श्रव्य होकर विषय वस्तुओंमें दृष्टा है और पुन पुन शुद्धात्मानुभवके भावना करता है, वही जीव स्वानुभव करके अनुभवानन्दका स्वाद लेता है।

(८९)

न कर्त्ता हूं न भोक्ता हूं ।

(३९)

मैं बंधा हूं व खुला, मैं संसारी हूं व सिद्ध, मैं क्रियावान हूं व अक्रिय, मैं सरागी हूं व रीतिरागी, मैं मूढ़ हूं व चतुर, मैं दुष्ट हूं व सज्जन, मैं कर्त्ता हूं व अकर्त्ता, मैं भोक्ता हूं व अभोक्ता, मैं सूक्ष्म हूं व स्थूल, मैं अनेक हूं व एक, मैं क्रोधी हूं व शान्त, मैं नित्य हूं व अनित्य, मैं दृश्य हूं व अदृश्य, मैं आगमज्ञ हूं व स्वभावज्ञ, मैं लोभी हूं व संतोषी, मैं जन्मा हूं व अजन्मा, मैं सुखी हूं व दुखी, मैं वर्णवान हूं व अवर्णवान इत्यादि अनेक वचनके जालोंको इन्द्रजालकासा फैलाव समझकर जो कोई उन्हें दूर करता है और इन विकल्प-जालोंसे अतीत निजरसमय साक्षात् स्वभावमें स्फुरायमान ज्ञान ज्योतिको ही ग्रहणकर सम्पूर्ण लोकालोकके पदार्थोंके सम्यक् कारण और कार्यका ज्ञाता होता हुआ अपनी शुद्ध चैतन्यमयी जातिसे ही नाना करता है और उनसे स्वरस-वेदनका आनन्द परस्पर लेना देना है वही आत्मा तत्त्वज्ञानी और आसन्न-भक्ष्य है । यही स्वभाव-स्वामी अपनी उपयोग परिणितरूपी जलको त्रिलोक-वनमें समेटकर अपने स्वरूपके ज्ञानमई नीचे खाड़ेमें भरकर अटूट अमृतके भंडारका धनी होता है और उस धनके सुखमय मदमें ऐसा उन्मत्त हो जाता है कि ग्व मात्र भी अन्यकी परवाह नहीं करता । एक निज अनुभूतिका ही प्यास रहता है और उसीमें रति करता है । दृढ़ सम्यक्त्वकी अचल महिमा उसके स्वरूपमें

विलसनें तहज़ीन होकर यह अंतरात्मा कीतराग-विज्ञानी रहकर तथा शिव-तियाके मोहमें रति करके निरंतर अनुभवानंदका स्वाद लेता है।

गतिमार्गणामें मैं ही हूँ ।

(୪୦)

त्रिलोकका स्वामी, शिव-रत्ननामक वर, आत्मिक अनंत गुणरूप धनका
धनी वास्तवमें मैं ही तो हूं। मेरा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतमुख,
अनंतवीर्य मेरे ही में हैं। मेरे निवासका न्याय मेरे ही आत्माका असंख्यात
प्रदेशामयी चैतन्य नगर है। मैं गतिमार्गगाते भित्त हूं। मुझे कोई चारों
गतियोंके स्वांगोंमें दंडा चाहे तो मैं कहीं भी नहीं मिल सक्ता हूं।
इन गतियोंका हेतु, स्वरूप, कार्य, और फल समस्त ही मेरी निर्मल
शुद्ध परिणतिसे विपरीत है। अहनिन्द्र, इन्द्र तथा सुर अनुर सर्व
ही निज स्वभावसे भित्त पर पुद्गल कर्मरूपी वर्णाओंके निमित्तसे
अनेक रूप, पद, कार्य और स्थानमें लब्धीन हैं। उनकी सारी
कीड, उनके सब क्रिया, उनकी सभी घनक्रिया मेरी शुद्ध
परिणिमिक क्रियामें संबंध विभूत है। ब्रह्मदेव, ब्रह्मेश्वर, नारायण,
प्रन्निराय, कुम्हार, अग्नि, मांस, मृत्तिका, पुरुषोंके अहकारमें
अथवा गोरे, बैल, हाथी के इनमें ईश्वर का भोजनमें लगी है
विद्यमान करने हुए मेरे आत्मिक नियंत्रणमें बाधबन्ध है। अष्टादश
सिंह राज, जेठ, मध्य, महाकल्याण, धर्म, यक्ष, यक्ष, यक्ष, यक्ष
मन्त्र हैं। हस्तिनापुर, विक्रमपुर, उग्र, अग्नि, उग्र, प्रत्येक
वर्णमणि, यथा भाषण, मोहिनी, अग्नि, प्रलय, अग्नि, अग्नि

जिस कायमार्गणामें भ्रमते हुए एकेन्द्री—पृथ्वी, जल, तेज, वायु-
 कायिक जीव क्रमसे मसूर व चनेके सदृश गोलकर, जल-बिन्दु
 सदृश गोल, सूची (सुई) सदृश लंबे बहुभुज, ध्वजा सदृश
 चौकोर आकारवाले सर्व ही उत्कृष्ट व जघन्य घनांगुलके असंख्यात
 भागमात्र अवगाहनाको घेरे हुए निगोदरहित ऐसे अदृश्य शरी-
 रको रक्खे हुए कि जबतक इनके बहुतसे शरीरका समूह न मिले
 तबतक इन्द्रिय—गोचर न हों, मूर्च्छित रहते हुए जड़मई बने रहते
 हैं; उस कायमार्गणामें उस अनुभवीका गमन नहीं होता । जिस
 एक जीव वाली प्रत्येक अप्रतिष्ठित व अनेक बादर निगोदजीव
 आश्रित सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जघन्य घनांगुलका असंख्या-
 तवां भाग वाली तथा उत्कृष्ट १००० योगन (छोट) लंबी, एक
 योगन चौड़ी गोल कमलकी कायमें पड़े हुए संतारी जीव छेदन
 भेदन आदिके दुःख सहते हुए आकुलित रहते हैं, उस कायके
 मोहने आत्मानंदीका पतन नहीं होता: दो इन्द्री जीव जघन्य घनां-
 गुलका संख्यातवां भाग अनुंघरीकी व उत्कृष्ट १२ योगन लंबी
 संखकी पर्यायमें; ते इन्द्री जीव जघन्य कुंभु हो अनुंघरीसे संख्यात
 गुणी व उत्कृष्ट श्रीष्मकालमें जम जीव हो ३ कोम लम्बी कायामें,
 चौइन्द्री जघन्य काणममक्की हो कुंभसे संख्यात गुणी व उत्कृष्ट
 एक योगन लम्बी भ्रमरकी कायामें, पचेन्द्री जघन्य मित्र्यक मत्स्य
 हो काणममक्कीमें संख्यात गुणी व उत्कृष्ट तीन पत्यके शरीरमें
 पैदा हो शरीर—मोही रह मिथ्यादर्शनके कारण मूर्छा और वियोगसे
 दुःख पाने है. परन्तु हर्ष है कि स्वान्म अवलेकी सम्यग्दृष्टीको इस

अकल्पिते अलग रहता है। वास्तवमें यह शरीर पुद्गलकी वर्गणा-
 नीति ही उत्पन्न है। जिस पुद्गलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्णके २० गुण
 हैं वे गुण आत्मामें कोई भी नहीं हैं; न यह क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य
 आदि है। यह सब नाम शरीर ही के हैं, आत्माके नहीं। जिस
 शरीरका निरन्तर पूरण गलन स्वभाव है, जो भीतर मलमूत्र आदिसे
 भरा है, जो स्वयं अपवित्र और जो इतका स्पर्श करे उसके अपवि-
 त्र करनेवाला है; ऐसे तनमें निश्चय हो जो चैतन्य तनकी पवित्र-
 तामें तन्नय रहता है, अक्षयी रहकर स्वतनयके स्वादमें मग्न रहता
 है; ऐसे अनुभवाके अहमिन्द्रोका वैक्रियक शरीर भी भिन्न ही प्रतीत
 होता है और वह तीन कालमें भी ऐसे तनकी कामना नहीं करता।
 जब जड़ तन ही भिन्न है तब तनके सम्बन्धी माता, पिता, भाई,
 बन्धु, पुत्र, स्त्री, पुत्री, धन, धान्य, क्षेत्र, महल, आदि सर्व ही आत्म-
 स्वरूपसे पृथक् हैं। जो मोहीं इनके मोहमें पड़ अपने स्वरूपके भु-
 लाता है—वह अपना ही शत्रु, द्रोही और अपना ही अकल्याण करने-
 वाला है। निज रस—रसियाके कोई पर रसके स्वादकी चिन्ता नहीं
 होती—वह रसिक स्वमदम ज्ञान, अमल-गुणवान्, भवदधि—तारण-
 यानपर आरुढ़ हो मनय ९ विद्वद्ध भवोंमें बहता जाना है, और
 अपने भुगरूप स्वरूपमें लवणम गह शिव—नरके मोहनेवाले अद्भुत
 आकर्षणमें प्रवेशकर अन्तर्गत होने में अपने मग्न मन स्वरूप
 अनुभवानन्दक स्थान करना है

वेदमार्गणाकी आकुलता ।

(४९)

शशि मम उज्ज्वल गुणधारी, अविकारी, अत्यन्त निरुद्ध भय
जीव कुमुद विस्तारी, अज्ञान-निशि-तम-हारी, भवाताप-संतप्त, सत
शमनकारी, परबन्धु आधाररहित निराधार परिणति आकाश विहारी,
अनन गुणरत्ना भंडारी, परमात्मा सदृश अंतरात्मा आज सम्पूर्ण
विवेदरूप तीव्र मनोदेशनामे रहित हो वेदरहित मुक्त-तियाके स्वा-
णमें दत्तचित्त हो रहा है और अपनेको संसारमें रहते हुए भी संसार-
स्थायी पृथक् मान रहा है, जिस वेदमार्गणमें भ्रमण करके यह
अज्ञानी जीव अपना संसार बनाता है, उस वेदके विचारको अब हेतु
निरीक्षित किया जाता है नव स्वन स्वभाव ही अन्तरात्माका पा
मोक्ष-मार्गमें बढ़ता पड़ा जाता है । जिस पुरुष वेदकी तीव्रताने त्रिखंडी
रावणको विध्वंस कर नरकवास दिया, व म्यारहवें रुद्र सात्त्विकरूप
मार्ग चिन्त छिद्र धष्ट करा, नरक पटुबाग, व दुःशासनको समारो
करा कुगति पाय बनाया तथा जिस पुरुष वेदके मोहमें
नारी जन श्रीमें लुब्ध हो निज-शील्यस्वको मन्थन करते हैं,
रहस्य वेदों निज अरि जान जो त्यागने और ब्रह्मस्वरूपमें रमन
वे मने अनगत्मा ब्रह्मण और ब्रह्मचारी हैं । जिस स्त्री
द्वी उत्कृष्ट चन्द्रनगाय मन एकलक पुत्र शोकसे हटा उसे
श्रीरामचन्द्र महामाये रूपमें लुब्ध करा अपना तक
वोधित करण कि उमका यही मोव तक
पढ़ने, सम्भवतासे यह होने तथा अज्ञान

होनेका कारण हुआ व जिस खीवेदकी तीव्रतासे चम्पापुरकी रानीने श्रीसुदर्शन सेठ ऐसे शीलवान्को शूलीपर बिठवाया व जिस वेदके तीन मोहमें पड़े खी—समान कामवेदनासे आकुल हो निज निजानन्द अविनाशी शिवनाथके मोहसे छूटी रह सांसारिक पुरुषोंकी इच्छा घर नके, तिर्यच योनि वास करती हैं, उस खीवेदको हेय समझ जो जीवात्मा त्याग करते हैं वे ही निर्वेद अवस्था प्राप्तकर स्वात्म स्वरूपमें मग्न होते हैं। जिस नपुंसक वेदमें पड़े नारकी, नर और तिर्यच कामकी तीव्र ज्वालासे दग्धपमान होते हुए सम्पद्यष्टिका लाभ न कर आत्मस्वरूपको नहीं परिचानते उस खंड वेदको सर्वथा हेय समझ अंतरात्मा आंतरिक मनोहर वृत्तिक अवलम्बन से मुखिया स्वभाव धारण करते हैं। जो इस शरीर, शरीरके अजयन और इन्द्री विषय रागद्वेषादि कषाय—इन मर्कके अपने स्वरूपसे पृथक् जानते, मानते और अनुभव करते हैं, वे जीव भवकरी निराकुलाहारी मुखोंसे अर्जित भवहारी निराकुलाहारी अनुभवानंदका सुखनयन मन की अत्यन्त तृप्त रह कृतकृत्यका अम्बर और दिगम्बरनेत्री। मरत्त्यन प्रगट करते हैं।

कषायोंकी वंचकता ।

१६

समस्त मानव-विकारों में भवकरी अजयन और इन्द्री विषय रागद्वेषादि कषाय—इन मर्कके अपने स्वरूपसे पृथक् जानते, मानते और अनुभव करते हैं, वे जीव भवकरी निराकुलाहारी मुखोंसे अर्जित भवहारी निराकुलाहारी अनुभवानंदका सुखनयन मन की अत्यन्त तृप्त रह कृतकृत्यका अम्बर और दिगम्बरनेत्री। मरत्त्यन प्रगट करते हैं।

जित अंशुर्हूँ कल तक रखते हैं, उससे संख्या २ गुना अधिक कल तक मनसे नाया, मान तथा श्रेयस्व अनुभव करते तथा देव श्रेयस्व जित अंशुर्हूँ तक भोगते, उससे संख्या २ गुना कल तक मनसे मान, माया और लोभको धारण करते हैं। और मनुष्य विषय जित अंशुर्हूँ कल तक लोभ कमायको रखते हैं, उससे संख्या २ गुना कल तक मनसे नाया, श्रेय और मानको हननेको सहन करते हैं। वास्तवमें चार गतिमें अलग-अलग प्रकारके सुखदुःख रूप बन्धनको पैदा करनेवाला इस जंतु वैश्यक चक्र—मृत्यु कलाप ही है। यही बन्धन जंतुके पैर काटा और निर्यादशन रूप जीवके संश्लेष पर-मनस्य बीजको बोता है, जिसके कर्म कटुवे कर्म मीठे फल भोगे २ यह जीव मीठे फलके लोभों तरल करता है, परन्तु कटुताई स्वल्प भोग फलके न पकर हुए परमें सुख कल कटुलिप्त होता है और अंतरालकी तरह निःकलाप भवसे रचित शून्य भवकी सुखद कटुलिप्तकी नहीं या अनुभवानन्द-के समाने रचित रह भव—अनन करता है। अन्य है कलाप—विनय बीर अला जिनकी अलापनिके कलापों के वे किमी ही तरह मर्त्य नहीं कर मला, जो निम्न अलापनिके सुखद रम-पन करते हैं वे ही मर्त्यमर्त्य सुखोंके अलाप अन्धिय, अन्ध-नरी अनुभवानन्दके भोग नृम रहते हैं



[illegible]

विचारा तुरत निर्यादही होता है । यदि चारों योद्धाओंमेंसे किसीका दाव पड़ गया तो सासादन अवस्थामें आ क्रमसे कम एक समय उत्कृष्ट छः आवलीके बीचमें गिरता पड़ा निर्यात्त्वकी भूमिमें चल जाता है। यदि मिश्रनोहनीका वंश चल पड़ा तो वह उपशान्त सम्यक्ती दही गुड्डे के समान मिले हुए सम्यक्त निर्यात्त्व श्रद्धानमें अन्तर्मुहूर्तके लिये जानाता है और यदि कुछ मंदतन पापके उदयसे सम्यक्त- मोहनोंने ही पकड़ लिया तो सम्यक्तसे सर्वथा न गिरकर निर्मलभावे से चलने लगना रूप श्रद्धाभावमें जानाता है और तब अपना नाम क्षयोपशान्त सम्यक्ती कहलाता है तथा इस भावको अधिकसे अधिक ६६ सागर और जबन्य एक अंतर्महूर्त तक नहीं छोड़ता है । शुद्ध-निधाय—नय करके इन आत्मिक सम्यक्दर्शन गुण स्वाभाविक हैं । परन्तु व्यवहारनय करके यही दर्शन—गुण अनादि व मादि दर्शन—मोह- नीके द्वारा सर्वथा आवर्णिन रहनेसे निर्यात्त्वके नमाने कहलाता है । इसी तरह इमी एक दर्शनगुणके ही नाम मानदन, मिश्र, उपशान्त, और क्षयोपशान्त हो जाने हैं । और जब किमी क्षयोपशान्त सम्यक्तीको कभी भी अपने अन्दर ईश्वर होकर सम्पूर्णभूतों केवल व धृतकेवलकों पर- सकराकार में प्रेम होने हेतु वे वहीं दर्शन गुण महान्मात्र मात्रा को प्राप्त करने का हेतु बनाते हैं जो उनसे उनके स्वभाव की विशेषता स्पष्ट होती है ।

(अ) विचारित सत्यम् — यह सत्य ही वास्तविक सत्य है । जिस प्रकार हमारे सामने प्रमाण होते जाते हैं उसी प्रकार सत्य ही वास्तविक सत्य है । जिस प्रकार हमारे सामने प्रमाण होते जाते हैं उसी प्रकार सत्य ही वास्तविक सत्य है । जिस प्रकार हमारे सामने प्रमाण होते जाते हैं उसी प्रकार सत्य ही वास्तविक सत्य है ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

